प्रकाशित: 23 मार्च 2018 को दैनिक जागरण में प्रकाशित -

शिक्षा क्षेत्र में इंस्पेक्टर राज का अंत

अभिनव प्रकाश

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा देश के कुछ उच्च शिक्षण संस्थानों को पूर्ण स्वायत्तता देने के फैसले की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। इस फैसले के बाद ये संस्थान अपने कार्यों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी या किसी भी अन्य सरकारी संस्था के हस्तक्षेप से मुक्त रहेंगे। राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (एनएएसी) द्वारा दिए गए अंकों के आधार पर श्रेष्ठ संस्थानों को अपने नए पाठ्यक्रम चलाने, शोध कार्य करने, फीस निर्धारित करने, स्व वित्त पोषित विशेष पाठ्यक्रम आरंभ करने, उनके लिए शिक्षक और विशेषज्ञों को प्रोत्साहन आधारित पारिश्रमिक पर नियुक्त करने इत्यादि की छूट होगी। इसके लिए उन्हें हर बार यूजीसी से स्वीकृति नहीं लेनी पड़ेगी और न ही यूजीसी और सरकारी अधिकारी बार-बार सत्यापन के नाम पर इन्हें परेशान करेंगे। यह शिक्षा के क्षेत्र में इंस्पेक्टर राज समाप्त करने और नीतिगत फैसले लेने में विकेंद्रीकरण की दिशा में अभी तक का सबसे बड़ा कदम है। ये शिक्षा संस्थान अपने शिक्षकों को योग्यता के आधार पर सातवें वेतन आयोग से भी अधिक वेतन दे सकेंगे ताकि शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित किया जा सके। ये अपना पाठ्यक्रम स्वयं निर्धारित कर सकेंगे। अपने अन्य केंद्र भी स्थापित कर सकेंगे और ऑनलाइन कोर्स या शॉर्ट-टर्म विशेषज्ञ पाठ्यक्रमों के मोर्चे पर भी पहल कर सकते हैं। यहां पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहां स्वायत्तता का अभिप्राय निजीकरण से नहीं हैं जैसा कि प्रचारित करने की कोशिश की जा रही है। इस फैसले के बाद भी शिक्षा संस्थानों में सरकार के आरक्षण जैसे अन्य प्रावधान भी पहले जैसे ही लागू रहेंगे। इस कदम का मुख्य उद्देश्य शिक्षण संस्थानों को तेजी से बदलती दुनिया और अर्थव्यवस्था के अनुरूप ढलने में सक्षम बनाना है। अभी

तक भारत में चल रही उच्च शिक्षा व्यवस्था बेहद घिसी-पिटी है और गिनती के कुछ संस्थानों को छोड़ दें तो बाकी मात्र डिग्री देने के अलावा समय की बर्बादी भर ही हैं। इनमें पढ़ने के बाद छात्र शायद ही कोई नौकरी पाने की योग्यता रखते हैं। भारत में बेरोजगारी का एक सबसे बड़ा कारण यह भी है कि तमाम संस्थानों की पढ़ाई-लिखाई वहां से शिक्षा प्राप्त छात्रों को किसी नौकरी के योग्य बनाती ही नहीं हैं। एक सर्वे के अनुसार वर्ष 2010 में भारत में 40 लाख सिविल इंजीनियरों की आवश्यकता थी, परंतु केवल 5,09,000 ही इस योग्य थे कि उन्हें काम दिया जाए। इसके बावजूद बेमानी शिक्षा व्यवस्था और बेकार की डिग्री बांटने का सिलसिला चलने दिया गया जिसका परिणाम आज दिख रहा है। एक ओर बड़ी संख्या में पढ़ेलिखे लोग नौकरी की तलाश में भटक रहे हैं वहीं दूसरी ओर चंद सरकारी नौकरियों के लिए मारामारी हो रही है।

एक अनुमान के तहत वर्ष 2020 में देश को 4,27,000 आर्किटेक्ट यानी वास्तुकारों की दरकार होगी जिसमें से तब सिर्फ 17 प्रतिशत ही उपलब्ध होंगे। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि देश में तमाम क्षेत्रों में नौकरी तो है, परंतु उन क्षेत्रों में आवश्यक रूप से कुशल लोग ही उपलब्ध नहीं हैं और जिन क्षेत्रों में लोगों ने पढ़ाई की है उनका नौकरी और रोजगार से लेनादेना ही कम है। भारत में कौशल विकास की स्थिति भी शर्मनाक है। इस मोर्चे पर केवल दो प्रतिशत कामगारों को ही औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त हुआ है जबकि ब्रिटेन में यह आंकड़ा 68 प्रतिशत, जर्मनी में 75 प्रतिशत और दक्षिण कोरिया में 96 प्रतिशत है। इसके बावजूद जब सरकार कौशल विकास और उद्यमिता को बढ़ावा देना चाहती हैं और उन्हें शिक्षा व्यवस्था में जोड़ना चाहती है तो उसका उपहास उड़ाया जाता है, विरोध किया जाता है कि सरकार सबको सिर्फ 'निजी कंपनियों का मजदूर' बनाना चाहती है।

दशकों की समाजवादी राजनीति और मानसिकता ने देश को इस कदर खोखला कर दिया है कि देश आंखें होेने के बावजूद अंधा बन गया है। वह यह देख पाने में असमर्थ है कि दुनिया में कोई भी ऐसा देश नहीं जो समाजवादी नीतियों और सार्वजनिक क्षेत्र के दम पर विकसित देश बना हो। दुनिया में जितने भी समृद्ध और सफल देश हैं वे सभी पूंजीवादी और निजी क्षेत्र की प्रधानता वाले देश हैं और उन देशों की शिक्षा व्यवस्था बाजार और उद्योग जगत से सीधे जुड़ी हुई है यानी

रोजगार और नौकरी के लिए जिन कोर्स और पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है उन्हें शुरू करने में उन्हें समय नहीं लगा। इसके विपरीत अपने देश में तो यह लगता है कि किसी को इसकी परवाह नहीं कि सामाजिक विज्ञान या मानविकी के क्षेत्र में क्या पढ़ाया जा रहा है? इसी तरह राजनीति विज्ञान हो या समाजशास्त्र या फिर इतिहास उनमें भी दशकों पुराने पाठ्यक्रम चल रहे हैं। इनमें कौन से नए शोध हुए हैं या फिर क्या कोई नया मत निकल कर सामने आया है?

सच तो यह है कि इन क्षेत्रों में भी भारत पर होने वाले लगभग सभी शोध अमेरिका और यूरोपीय विश्वविद्यालयों से ही निकल कर आते हैं। यहां बैठे लोग विश्व गुरु होने का ढोल भर ही पीटते हैं। ऐसी दयनीय स्थिति के बाद भी भारत में एक बड़ा तबका ऐसा है जो किसी भी परिवर्तन का विरोध करेगा और दस तरह की कहानियां बनाएगा कि किस प्रकार स्वायत्तता देना एक गलत कदम है या फिर मात्र कुछ ही संस्थानों को स्वायत्तता देना भेदभाव है। देश का भला चाहने वालों को दो बातें समझनी अत्यंत आवश्यक हैं। पहली, तेजी से बदलती तकनीक और अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में वह दौर समाप्त हो रहा है जब जीवन के आरंभ में कुछ वर्षों तक पढ़ाई कर जीवन भर उसी योग्यता के दम पर नौकरी करते रह सकते थे। अब लोगों को नियमित अंतराल पर नए कोर्स करने, नए उभरते क्षेत्रों में योग्यता हासिल करने की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरी, शिक्षा व्यवस्था का बाजार से जुड़ना अवश्यंभावी है और सरकारी बाबू राज से मुक्त होना भी उतना ही आवश्यक है। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने भी सरकार में रहते हुए ऐसी शिक्षा व्यवस्था की ही वकालत की थी जो रोजगारपरक होने के साथ ही उद्योग एवं व्यापार जगत की जरूरत के अनुरूप हो। इसके लिए उन्होंने शिक्षण संस्थानों के कौशल विकास, नए पाठ्यक्रम, मूल्य वर्धित पाठ्यक्रम को सरलता और तत्परता से लागू करने की क्षमता पर बल दिया था।

बहरहाल देश ने आंबेडकर के विपरीत नेहरूवादी और समाजवादी नीति को अपनाया और परिणाम सबके सामने हैं। ऐसे में उम्मीद है कि मोदी सरकार की यह पहल सही दिशा में पहला कदम साबित होगी। सरकार सिर्फ खानापूर्ति तक ही नहीं रुकेगी, बल्कि इसके सभी पहलुओं को देखते हुए सही से लागू भी करेगी। साथ ही स्कूली शिक्षा के स्तर पर भी बड़ा परिवर्तन करेगी, क्योंकि वहां के हालात तो और

भी ज्यादा खराब हैं, क्योंकि किसी भी देश की उच्च शिक्षा का स्तर अंततः इस पर निर्भर करता है कि वहां प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का स्तर क्या है? यदि शिक्षा की यह आधारशिला सही है तो फिर उच्च शिक्षा की इमारत बुलंद बनती है।

[लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक एवं स्तंभकार हैं]